'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय', अमृतचन्द्राचार्यकृत शास्त्र है। पहली गाथा में इष्टदेव की पहिचान करके नमस्कार किया है। इष्टदेव को नमस्कार। इष्टदेव कैसे ? दर्पण के तल में जैसे सभी पदार्थ ज्ञात होते हैं, वैसे जिनके ज्ञान में सब पदार्थों का समूह ज्ञात हो - ऐसी जिन्हें शक्ति प्रगट हो गयी है - ऐसे परमात्मा को पहिचानकर, उन्हें नमस्कार किया है। धर्म का मूल सर्वज्ञ पहले से होना चाहिए। एक समय में तीन काल, तीन लोक के पदार्थों के समूह को सब प्रत्यक्ष है, जिनके ज्ञान में पूर्ण आ जाए, ऐसे ज्ञानी को देव कहा जाता है। ऐसा कहकर पहिचान से केवली की प्रसिद्धि की और उन्हें वन्दन किया। ऐसा दूसरा हो सकता नहीं। ऐसे देव, जैन वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र होते नहीं - ऐसा कहकर मांगलिक किया।....

अब इष्ट आगम का स्तवन करते हैं - देव-शास्त्र.....

परमागमस्य जीवं निषिद्धजात्यन्ध सिन्धुरविधानम्।
सकलनय विलसितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्।।२।।

क्या कहते हैं ? **जन्मान्ध पुरुषों के हस्ति-विधान का निषेध करनेवाला,...** अन्धे.... सब हाथी को देखें। आँखें नहीं, स्पर्श इन्द्रिय से देखें और उसका विधान करे, बतावे कि हाथी ऐसा... ऐसा... ऐसा... छाज जैसा हाथी है, थम्बे जैसा हाथी है, एक-एक... देखकर कहे। जन्म से अन्धे, ऐसे पुरुषों के हाथी के विधान की रीति का निषेध करनेवाले। एक-एक पहलू को जाननेवाले अन्धे, पूरी वस्तु को नहीं जान सकते; उनका निषेध करनेवाला कौन ? यह परमागम। **समस्त नयों से प्रकाशित वस्तु स्वभाव का**

www.vitragvani.com

'सकलनय विलसितानाम्' समस्त नयों से परिपूर्ण पदार्थ का स्वरूप है तथा उस नय से ऐसा है। वस्तु का स्वरूप है, उस प्रकार, हों! समस्त नयों से प्रकाशित वस्तुस्वभाव। जैसा वस्तु का स्वभाव है, उसके अनेक अंगों में से एक-एक अंग को भी भिन्न-भिन्न करके अनेक नयों से उसका ज्ञान कराता है। **'विरोधमथनं' विरोध दूर करनेवाला...** है। नित्यानित्य, एक-अनेक आदि धर्म है, उनका भी यह परमागम स्याद्वाद विरोध दूर करनेवाला है, विरोध दूर करनेवाला है। विरोध उसमें रहता नहीं।

'परमागमस्य' उत्कृष्ट जैन सिद्धान्त का जीवभूत... परमागम के सिद्धान्तरूपी परमागम, उसका जीवभूत। शब्द 'जीव' है, उसका अर्थ जीवभूत। उसका तत्त्व, इस बिना अनेकान्त न होवे तो जैसे मरा हुआ – जीवरहित कलेवर। वैसे यह अनेकान्त न होवे तो यह शास्त्र मरे हुए कलेवर जैसा है – ऐसा कहते हैं। **अनेकान्त को–एक पक्ष रहित स्याद्वाद को मैं...** लो! इसमें गड़बड़ है सब, कहेंगे नीचे। **अनेकान्त को–एक पक्ष रहित स्याद्वाद को...** वस्तु के स्वभाव में अनन्त अंग, धर्म हों, उनकी बात है। समझ में आया? उसमें न हो, उनकी बात कहाँ से आवे? इसमें कहा न? **'सकलनय विलसितानाम्'** इसमें अनेक नयों से विलसित – ऐसा उसका धर्म है, उसे यह परमागम बतलाता है।

अनेकान्त को–एक पक्ष रहित स्याद्वाद को मैं अमृतचन्द्रसूरि नमस्कार करता हूँ। लो! अनेकान्त को नमस्कार किया है। समझ में आया? इस अनेकान्त के बहाने अभी बड़ी गड़बड़ उठी है। सिद्ध को भी कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र (कहते हैं,) इसका नाम अनेकान्त। ऐसा अनेकान्त नहीं होता। उनमें – सिद्ध में हो, उसे अनेकान्तपना लागू पड़ता है। पूर्ण स्वतन्त्र सुखी हैं, बिल्कुल-किंचित् परतन्त्र नहीं – ऐसे उनमें धर्म हैं। कथंचित् परतन्त्र-ऐसा कोई धर्म उनमें नहीं है। अब, स्याद्वाद का – अनेकान्त का ऐसा अर्थ करते हैं, लो! सबमें फुदड़ीवाद!

टीका : 'अहं अनेकान्तं नमामि' – मैं ग्रन्थकर्ता,... अमृतचन्द्राचार्यसूरि, जो समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय के मूल टीका-कर्ता। एक-एक ग्रन्थ में आता है, उनकी तो टीका की थी। मैं एक ग्रन्थकर्ता। लो! देखो! आया या नहीं मैं ग्रन्थकर्ता? पीछे कहा था – मैं कहनेवाला हूँ... आता है न? मैं कहनेवाला हूँ... उसका अर्थ लिया,

www.vitragvani.com

कहनेवाला हूँ, कहा है। मैं कहनेवाला और यह कहने योग्य है और मैं इसे कहता हूँ – ऐसे कुछ भ्रम करना नहीं, ऐसा कहा है। आहा! ऐसे वचनों से शास्त्र बने हैं। निमित्तरूप कौन था? – उसका ज्ञान कराने को कहते हैं। आत्मा से शास्त्र बनता नहीं। यह विवाद बड़ा। शास्त्र आत्मा (करता है), यह रहा लो! **मैं ग्रन्थकर्ता,...** है या नहीं? ग्रन्थकर्ता अमृतचन्द्राचार्य है। ग्रन्थकर्ता वाणी है? भाषावर्गणा कोई ग्रन्थ को करे? भाषावर्गणा ही ग्रन्थ को करे; आत्मा उसका कर्ता नहीं। यहाँ तो हाँ पाड़े तो हाँ पड़े वैसा है। यहाँ तो मैं ग्रन्थकर्ता-निमित्त कौन है, उसका ज्ञान कराया है। समझ में आया? निमित्तकर्ता कौन है? निमित्तकर्ता का अर्थ? होता है तो स्वतन्त्र, परन्तु निमित्तरूप में था इतना निमित्तकर्ता, ग्रन्थकर्ता – ऐसा कहने में आया है। निमित्तकर्ता का अर्थ? कि पर का कर्ता नहीं। उसका अर्थ ही यह है। यह शब्द आवे, इसलिए विवाद उठाते हैं। लो! मैं कर्ता हूँ – आया नहीं? मैं कर्ता हूँ – यह तो किस अपेक्षा से लिखा है, लिखने की भाषा है। स्वयं २२६ गाथा में कहा है, अन्त में है। वर्ण ने यह किया, पद से हुआ वाक्य और वाक्य से हुआ शास्त्र। अन्तिम गाथा है, लो!

वर्णैः कृतानि चित्रैः पदानि तु पदैः कृतानि वाक्यानि।
वाक्यैः कृतं पवित्रं शास्त्रमिदं न पुनरस्साभिः।।२२६।।

वे इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि स्वयं की लघुता नक्की करेंगे। यह समयसार के माहात्म्य के लिये बताते हैं, वरना किया है तो इन्होंने, ऐसी बात करते हैं। है? **स्वामी अमृतचन्द्र महाराज ग्रन्थ पूर्ण करता पूर्ण लघुता बताते हैं...** लघुता अर्थात्?... समझ में आया? **वर्णैः कृतानि चित्रैः** देखा? ...अर्थात् अनेक प्रकार के अक्षरों द्वारा रचा हुआ पद, पद से बना हुआ वाक्य, ऐसा। देखा? और वाक्यों से फिर यह पवित्र शुद्ध शास्त्र कहा, बनाने में आया? **हमने कुछ भी बनाया नहीं...** वे तो कहते हैं लघुता के लिये, परन्तु किया (बनाया) तो है न? यह विवाद, लो! ठीक, किया नहीं। **वर्णैः कृतानि चित्रैः** ऐसा है न? अनेक प्रकार के चित्रवाले अर्थात् अनेक प्रकार के अक्षरों द्वारा **कृतानि** है। आत्मा से किया हुआ नहीं। कहो, समझ में आया? बड़ा विवाद चलता है।

'अहं अनेकान्तं नमामि' – मैं ग्रन्थकर्ता, अनेकान्त-एक पक्ष रहित स्याद्वाद

www.vitragvani.com

को नमस्कार करता हूँ। देखो! एक पक्षरहित अर्थात् पक्ष नहीं – आत्मा नित्य ही है, अनित्य (ही) है, एक ही है, अनेक ही है... ऐसे एकान्त नहीं। जैसा है, वैसा एक पक्ष रहित स्याद् – अपेक्षा से, वाद – कहना – ऐसे अनेकान्त को **नमस्कार करता हूँ।** शब्द में प्रत्येक में फर्क, अर्थ न करे तो क्या हो?

यहाँ कोई प्रश्न करे कि जिनागम को नमस्कार करना चाहिये था,... प्रश्न यह है। परमागम का **'जीवं',** अनेकान्त को नमस्कार किया। परमागम का जीवं अथवा जीवं अनेकान्त को नमस्कार। परमागम को क्यों नमस्कार नहीं किया? **स्याद्वाद को नमस्कार किया, उसका कारण क्या?** लो! **उसका उत्तर –** स्याद्वाद को क्यों नमस्कार किया, अर्थात् अनेकान्त को क्यों नमस्कार किया? ऐसा। परमागम को नमस्कार करना है, परन्तु परमागम का जीव तो अनेकान्त है, तो परमागम को नमस्कार करना था।

उसका उत्तर – जिस स्याद्वाद को हमने नमस्कार किया, वह कैसा है? लो! स्याद्वाद को, कैसा है? **उत्कृष्ट जैन सिद्धान्त का जीवभूत है।** वह परमागम का जीवभूत है, इसलिए उसे नमस्कार किया है। उसका तत्त्व है। समझ में आया? परमागम का वह सत्व है, परमागम का वह माल है; अनेकान्त, वह परमागम का माल है। प्रत्येक द्रव्य, द्रव्यरूप से है, परद्रव्यरूप से नहीं; प्रत्येक गुण, गुणरूप से है, दूसरे गुणपने नहीं; प्रत्येक पर्याय स्वपने है, परपने नहीं। ऐसा जो अनेकान्त वस्तु का स्वरूप है उसमें। ऐसा स्वरूप परमागम का जीवभूत अनेकान्त, उसे हमने नमस्कार किया है, क्योंकि वह परमागम का जीवभूत है।

परमागम को नमस्कार नहीं किया और इसे क्यों किया? (क्योंकि) यह परमागम का सत्त्व है। अनेकान्त, वह परमागम का सार है, इसलिए उसे नमस्कार किया है। प्रत्येक को ऐसा अनेकान्त लगा देना – ऐसा कितने ही कहते हैं। समझे न? लगाया है न? देखो न! कितने ही पण्डित सामने पड़े हैं कि ऐसा नहीं होता – सिद्ध भी परतन्त्र, सादि-अनन्त परतन्त्र (हैं)। कहो! सादि-अनन्त परतन्त्र हुए, आगे नहीं जा सके इसलिए। सिद्ध हुए न तब से। सिद्ध हुए तब से वे अनन्त काल तक परतन्त्र-सादि-अनन्त परतन्त्र। संसारी तो परतन्त्र थे, वह तो फिर अलग। समझ में आया? कोई सिद्ध को परतन्त्र ठहराते हैं। आगे

www.vitragvani.com

धर्मास्तिकाय नहीं, इसलिए जाते नहीं, इतना परतन्त्र सही या नहीं ? विभाविक शक्ति... तो निमित्ताधीन काम नहीं कर सकती। सिद्ध को शरीर प्रमाण उनका आकार रहना पड़ा। अन्तिम शरीर प्रमाण आकार रहना पड़ा न ? इतने पराधीन हैं या नहीं ?

मुमुक्षु : .....

उत्तर : कौन करता है लम्बा ? पराधीन जरा भी नहीं। स्वयं का स्वभाव पूर्ण स्वतन्त्र प्रगट हुआ है, जरा भी परतन्त्र है नहीं। ऐसा नहीं कि अनेकान्त अर्थात् किंचित् परतन्त्र और किंचित् स्वतन्त्र। यह अनेकान्त ऐसा नहीं है। उनमें स्वतन्त्रता पूर्ण हुई है, परतन्त्रता जरा भी नहीं - ऐसे अनेकान्त को भगवान, परमागम का जीव कहते हैं। परमागम का बीज है। **उत्कृष्ट जैन सिद्धान्त का जीवभूत है।**

भावार्थ : जैसे शरीर, जीवसहित कार्यकारी है,... देखो! ऐ...ई! कार्यकारी का अर्थ कि जीव होवे तो शरीर को जीव कहा जाता है, इस सचेत शरीर को, परन्तु जीव अकेला नहीं हो तो मुर्दा कहलाता है, ऐसे इतनी बात है। जीव न होवे तो शरीर मुर्दा कहलाता है, जीव होवे तो इसे - शरीर को सचेतन कहा जाता है कि इसका शरीर है। ...शरीर, जीवसहित कार्यकारी है, अर्थात् जीव होवे तो शरीर का कार्यकारीपना हो - ऐसा यहाँ नहीं कहना है। शरीर का कार्य तो शरीर से होता है, परन्तु शरीर में जीव होवे तो शरीर की कीमत कही जाती है, नहीं तो मुर्दा है ऐसा। जला देते हैं या नहीं ? जीव होवे, तब तक रखते हैं, जीव निकला तो जाओ जला दो, करो राख। जीव होवे, तब तक एक मक्खी बैठने न दे, अमुक चाहिए, पंखा लगाये... जीव गया तो डालो, अर्थी को मजबूत बाँधो। कहो! ऐसा बाँधे कि ऊपर श्वाँस न ले सके इतना ऐसा बाँधे। इस जीव रहित शरीर की जैसे कोई कीमत नहीं - ऐसा कहना है।

जीव रहित मृतक शरीर किसी काम का नहीं... फिर अर्थ में विवाद उठाते हैं, क्षण-क्षण में उठावे ...सत्य की ऐसी चीज है। **वैसे ही जैन सिद्धान्त भी वचनात्मक है,...** लो! जैन सिद्धान्त है, वह वचनस्वरूप है। शब्द तो वचनस्वरूप हैं न ? यह आगम। **वचन क्रमवर्ती है।** देखो! यहाँ स्याद्वाद सिद्ध करना है न ? वचन हैं, वे क्रम-क्रम से कह सकते हैं, एक साथ पूरा नहीं कह सकते। एक द्रव्य के अनन्त गुण एक साथ कह सकें ?

www.vitragvani.com

नित्यपना, अनित्यपना एक साथ कह सकें ? ऐसे वचन क्रमवर्ती हैं, अर्थात् एक साथ कह नहीं सकते।

वह जो कथन करता है, वह एक नय की प्रधानता से करता है... वचन जो पदार्थ का स्वभाव कहते हैं, वह क्रम-क्रम से कहते हैं और इससे वह वचन उस एक नय की प्रधानता से वचन होता है। **परन्तु जैन सिद्धान्त सर्वत्र स्याद्वाद से व्याप्त है।** देखो! यहाँ आया। परन्तु जैन सिद्धान्त - भगवान की वाणी सर्वत्र स्याद्वाद से - कथंचित् कहने से व्याप्त है। इसलिए इसमें भ्रम डालते हैं। **जहाँ एक नय की प्रधानता है, वहाँ दूसरा नय सापेक्ष है,...** एक नय से आत्मा (को) नित्य कहे, वहाँ दूसरा नय अनित्य, वह सापेक्ष में रहा है, अनित्य भी साथ है। नित्य कहा, इसलिए नित्य (ही) है - ऐसा नहीं है।

दूसरा नय सापेक्ष है,... एक नय की मुख्यता से कहा, देखो! प्रधानता। **वहाँ दूसरा नय सापेक्ष है, इसलिए जैन सिद्धान्त इस जीव को कार्यकारी है।** लो! जैन सिद्धान्त इस जीव को कार्यकारी है। यह वचनस्वरूप जैन सिद्धान्त.... कहे और बात आवे तब। एक ओर कहे, जैन सिद्धान्त से ज्ञान होता नहीं, वाणी से ज्ञान होता नहीं, लो! निमित्तपना कौन है - यह बताना है न ? समझ में आया ? कहते हैं कि ज्ञानी को इस शास्त्र से ज्ञान होता नहीं, वाणी से ज्ञान होता नहीं, दिव्यध्वनि से भी होता नहीं। कहो! ज्ञान, ज्ञान से होता है, परन्तु उसमें निमित्त कौन था ? - उसकी बात करके जैन सिद्धान्त इस जीव को इस अपेक्षा से कार्यकारी है। समझ में आया ?

अन्यमत का सिद्धान्त एक पक्ष से दूषित है,... दूसरे के - अज्ञानी के कहे हुए शास्त्र एक ही पक्षी - दूसरे पक्ष को नहीं मानने के कारण दूषित हैं। **स्याद्वादरहित है,...** उनमें स्याद्वादपना नहीं है। अपेक्षा से जानकर कहना एक पक्ष है और दूसरा पक्ष भी सामने है - यह बात नहीं मानते। **अतः कार्यकारी नहीं है।** इतना सिद्ध करना है। अनेकान्त - सर्वज्ञ के कथित सिद्धान्त, जीव को निमित्तरूप से कार्यकारी कहने में आते हैं और अज्ञानी के सिद्धान्त एक पक्ष से दूषित है, इसलिए वे कार्यकारी हैं नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर की वाणी-परमागम, अनेकान्त से भरपूर है, वही आत्मा को हितकर है, क्योंकि वास्तविक वस्तु के स्वरूप को बतानेवाली है।

www.vitragvani.com

जो जैन शास्त्रों के... अब, यहाँ कहते हैं, देखो! **जो जैन शास्त्रों के उपदेश को भी अपने अज्ञान से स्याद्वाद रहित श्रद्धान करते हैं,...** लो! इसमें भी वापस अपेक्षा से जो कहा हो, उसे न समझे और एकान्त से माने। **जो जैन शास्त्रों के उपदेश को भी...** ऐसा। दूसरे को तो क्या, दूसरे की तो बात की - अन्यमती के विषय में। जैन शासन में अनेकान्त से कथन है, उसे भी अपने ज्ञान से स्याद्वाद रहित अपेक्षा कथन किया एकान्त नित्य माने या अनित्य ही माने या शुद्ध ही माने, संसारी को पर्याय में अशुद्धता न माने। **अपने अज्ञान से स्याद्वाद रहित श्रद्धान करते हैं, उन्हें विपरीत फल मिलता है।** लो! यह जैनशासन के पढ़नेवाले को भी, अपने अज्ञान से स्याद्वादरहित श्रद्धा करे, उसे उसका विपरीत फल आता है। पहले में पहले कार्यकारी कहा था न? परन्तु वह तो वास्तविक तत्त्व, अनेकान्त से समझे, उसे कार्यकारी (होता है।) उसे भी अपने ज्ञान से... देखो न! शास्त्रों का अर्थ कितना बदलते हैं! परन्तु क्या हो इसमें? ओहो...! पूरी बात बदल डाली। वे कहते हैं कि तुमने बदला, यह कहते हैं। पण्डितों-पण्डितों में दो के बीच विवाद पड़ा न अभी तो।

जैन शास्त्रों के उपदेश को भी... ऐसा। उनमें (अन्यमत में) तो दूषित है ही, परन्तु जैन सिद्धान्त के **उपदेश को भी अपने अज्ञान से...** अर्थात् इसमें तो है, यह अनेकान्तपना यथार्थ है परन्तु **अपने अज्ञान से स्याद्वाद रहित...** अपेक्षा के कथन बिना श्रद्धा करता है, उसे तो विपरीत फल मिलता है, उसे तो मिथ्यात्व का फल और चार गति के दुःख प्राप्त होते हैं। **इसलिए स्याद्वाद परमागम का जीवभूत है।** इसलिए अनेकान्तवाद- अनेकान्त इसका स्वभाव है, स्याद्वाद इसका कथन है। अनेकान्त इसका धर्म है और स्याद्वाद इसका कथन है... **इसलिए स्याद्वाद...** अपेक्षा से कहना, वह **परमागम का जीवभूत...** जीव / सत्त्व है। परमागम का जीवता चेतन वह है - अनेकान्त। **उसे नमस्कार करता हूँ।** कहो, समझ में आया? स्व से लाभ हो और पर से लाभ हो, दो प्रकार का अनेकान्त, ऐसा फिर वापस लगाते हैं। अनेकान्त है, बोले अवश्य ऐसा, भाषा में आवे इससे ऐसा हो, इससे ऐसा हो।

मुमुक्षु : .....

www.vitragvani.com

उत्तर : यह लाभ आवे भाषा भी है नहीं। लाभ क्या है परन्तु ? क्या हो ? वस्तु ही ऐसी है। सुनने का भाव – विकल्प आवे बिना नहीं रहे ? और उसकी योग्यता होवे तो वैसा निमित्त न हो – ऐसा हो ? तथापि उससे होता नहीं। बोलने में तो ऐसा आवे कि उससे होता है। धर्मास्तिकाय होवे तो गति होती है – ऐसा बोले न ? धर्मास्तिकाय होवे तो गति होती है, अधर्मास्तिकाय होवे तो स्थिरता होती है। इसलिए कहीं ऐसा नहीं है। व्यवहार का कथन आवे। ऐसा यहाँ कहा न ? शास्त्र के बिना ज्ञान नहीं होता – ऐसा भी कहा, लो न !... उससे कार्यकारी होता है – ऐसा लिया, लो ! समझ में आया ? निमित्त से कथन है न, भाई ! परमागम शास्त्र कहना है अर्थात् वचनात्मक कथन है। उसमें अनेकान्तपना पड़ा है। उसे भलीभाँति समझे तो इसे अनेकान्त कार्यकारी शास्त्र कहलाये – ऐसा कहा न ? नहीं तो, कहते हैं ये के ये शास्त्र विपरीत फल मिले। इसी शास्त्र को स्वयं अपनी समझ की अपेक्षा से बात कही न ? शास्त्र तो शास्त्र है, ऐसा कहा न ? नहीं तो यह किसलिए लिखे ? **जैन शास्त्रों के उपदेश को भी...** अर्थात् उसकी वाणी को भी **अपने अज्ञान से...** यह तो स्वयं का अज्ञान हुआ। स्याद्वाद को समझना, यह भी अपना ज्ञान और विरुद्ध समझना, यह भी अपना अज्ञान है। समझ में आया या नहीं ? ठीक से समझे तो ज्ञान अपना हुआ और न समझे उसे तो अज्ञान उसका हुआ। अर्थात् स्वयं के कारण से इसे ज्ञान और अज्ञान होता है। **इसलिए स्याद्वाद परमागम का जीवभूत है। उसे नमस्कार करता हूँ।**

कैसा है स्याद्वाद? 'निषिद्धजात्यन्धसिन्धुरविधानम्'.... 'सिन्धुर' क्या लिया ? **'सिन्धुर'** अर्थात् ? **'सिन्धुर'** का अर्थ हाथी। **'सिन्धुर'** अर्थात् हाथी ? **जन्मान्ध पुरुषों का हस्ति–विधान जिसने दूर कर दिया है,...** भाषा देखो ! अन्धे पुरुषों का हाथी का कथन, (उसका) जिसने विरोध दूर किया है। समझ में आया ? एक–एक अवयव को एक–एक; पूँछ पकड़ी हो, उसे बुहारी जैसा हाथी लगता है। लो, दाँत पकड़े हों, उसे... लगता है, पैर पकड़ा हो, उसे थम्बे – जैसा लगता है। लो !... उसे मोटी कोठी जैसा लगता है। हाथी कोठी जैसा था। एक कहता है – बुहारी जैसा था; एक कहे कि थम्बे जैसा था; एक कान पकड़कर कहता है कि सूपड़ा जैसा था। पूरा तो ऐसे देखे नहीं। एक–एक अंग को, उसके अंग जितने हैं, उतने से पूरा अंग देखना चाहिए; वैसा न देखकर, जो

www.vitragvani.com

उसके अंग हैं, उसके अंग हैं, उन्हें न देखकर, उनमें का एक-एक अंग देखकर पूरे अंगी को भूल जाते हैं।

जन्मान्ध पुरुषों का हस्ति-विधान... अर्थात् कथन करना। **जिसने दूर कर दिया है,...** एकान्त को। ऐसा स्याद्वाद है। **जिस प्रकार अनेक जन्मान्ध पुरुष मिले,...** सब अन्धे मिले। **उन्होंने एक हाथी के अनेक अंग अपनी स्पर्शनेन्द्रिय से अलग-अलग जाने।** लो! एक ही हाथी के अनेक अंग। हाथी एक, अंग अनेक। उन्हें **अपनी स्पर्शनेन्द्रिय से...** देखो! अन्धे तो स्पर्श से जाने न, ऐसे! अलग-अलग जाने। कहो, समझ में आया? **आँखों के बिना, पूर्ण सर्वांग हाथी को न जानने से,...** आँखें होवे तो उसमें सर्वांग हाथी को जाने। सर्वांग, सर्वांग। उस अनेक अंग को एक-एक से जाना। **सर्वांग हाथी को न जानने से, हाथी का स्वरूप अनेक प्रकार कहकर...** अन्धे, हाथी को अनेक प्रकार से कहते हैं - थम्बे जैसा है और कोठी जैसा है और अमुक है तथा अमुक है... **(एक अंग को ही सर्वांग मानकर)...** लो! एक ही भाग को पूरा हाथी गिनते हैं।

परस्पर वाद करने लगे। परस्पर झगड़ा करने लगे - वह कहे सूपड़ा जैसा हाथी नहीं; वह (दूसरा) कहे - तू कहता है वैसा नहीं; वह कहे - तू कहे वैसा नहीं। एक-एक अंग को जानकर स्पर्श इन्द्रिय से जाना। समझ में आया? दूध का दृष्टान्त आता है न? अन्धे को दूध (दिया)। दूध कैसा है? भाई! तो कहे - बगुले के पंख जैसा। बगुला कैसा होता है? कि ऐसा। ऐसा दूध नहीं खाया जाता मुझसे। वह तो पंख की उपमा कहीं। अन्धे ने देखा नहीं। अन्धे को कहा दूध कैसा? तो कहे - सफेद। सफेद कैसा होता है? बगुले के पंख जैसा। बगुला कैसा होता है? कि ऐसा। उसे हाथ अड़ा; तो कहे - नहीं, यह मुझसे खाया नहीं जाता। परन्तु बगुले का आकार पूछा। अन्धे को, देखे बिना बगुले का सफेद रंग कैसा है - इसका पता नहीं। वैसे अन्धे अनेक अंग में एक-एक अंग को स्पर्श कर स्पर्श इन्द्रिय द्वारा पूरे हाथी का रूप कहते हैं। परस्पर विवाद करते हैं। वह कहे - हाथी ऐसा। नहीं, नहीं; मैंने प्रत्यक्ष देखा है, पूँछ ऐसी थी, पैर ऐसा था, अमुक ऐसा था, सूंढ़ ऐसी मोटी... ऐसे-ऐसे सूढ़ थी, मूसल जैसी, लो! समझ में आया?

www.vitragvani.com

आँखों के बिना, पूर्ण सर्वांग हाथी को न जानने से, हाथी का स्वरूप अनेक प्रकार कहकर (एक अंग को ही सर्वांग मानकर) परस्पर वाद करने लगे। तब आँखवाले पुरुष ने हाथी का यथार्थ निर्णय करके... लो! **आँखवाले पुरुष ने हाथी का यथार्थ निर्णय करके...** एक ही आत्मा के अनेक धर्म हैं। उनमें एक-एक धर्म गिनकर, अज्ञानियों ने वाद-विवाद किया है। आत्मा में जो नित्य-त्रिकाल है, वह एक ही देखकर (कहने लगे) नित्य ही है। अनित्य देखकर कहे - अनित्य ही है; एक देखकर - एक ही है। ऐसे... हों! पूरा स्वरूप तो वहाँ सर्वज्ञ के बिना जानने में आया नहीं। आँख खुली हो तो पूरा वस्तु का स्वरूप जाने। एक-एक अंग पकड़कर बैठे, बस! नित्य है, नित्य है। दूसरा कहे - एक ही है, एक ही है, आत्मा। लो! **आँखवाले पुरुष ने हाथी का यथार्थ निर्णय करके उनकी भिन्न-भिन्न कल्पना को दूर कर दिया।** कहो! समझ में आया? किसकी? अन्धे, हाथी को देखनेवाले एक-एक अंग को देखकर, परस्पर विवाद करते थे, उन्हें हाथी को आँख से देखनेवाला (उनकी) **भिन्न-भिन्न कल्पना को दूर कर दिया।** अर्थात्... ऐसा पूरा नहीं, सब मिलकर पूरे हाथी का स्वरूप है।

उसी प्रकार अज्ञानी एक वस्तु के अनेक अंगों को... भाषा यहाँ है, देखो! **उसी प्रकार अज्ञानी एक वस्तु के अनेक अंगों...** उसमें अनेक अंग हैं। समझ में आया? एक आत्मा में अनेक धर्म हैं, नित्य-अनित्य आदि अनेक गुण, उसमें हैं, अंग उसके हैं न? है उसकी व्याख्या करनी है। **अज्ञानी एक वस्तु के अनेक अंगों को अपनी बुद्धि से...** है तो वस्तु में अनेक अंग वस्तु में **अपनी बुद्धि से जुदे-जुदे अन्य-अन्य रीति से निश्चय करता है।** ऐसा कहते हैं। वस्तु में तो अनन्त धर्म हैं - नित्य-अनित्य, एक-अनेक, भेद-अभेद-(ऐसे) अनेक धर्म हैं परन्तु **अपनी बुद्धि से...** अपनी बुद्धि से अर्थात् वस्तु में है, उस प्रकार नहीं जानता। **जुदे-जुदे अन्य-अन्य रीति से...** भिन्न-भिन्न, अन्य-अन्य प्रकार। एकान्त आत्मा क्षणिक ही है। लो! यह रीति दूसरी हो गयी। एकान्त आत्मा नित्य ही है - यह रीति दूसरी हो गयी। **अन्य-अन्य रीति से निश्चय करता है। सम्यग्ज्ञान बिना सर्वांग (सम्पूर्ण) वस्तु को न जानने से...** पूरा आत्मा का, परमाणु आदि द्रव्यों का पूर्ण स्वरूप अखण्ड क्या है, (उसके) **सम्यग्ज्ञान बिना सर्वांग (सम्पूर्ण) वस्तु को न जानने से एकान्तरूप वस्तु मानकर...** एक ही

www.vitragvani.com

गुण को, एक ही दशा को, एक ही स्थिति को मानने से परस्पर वाद करते हैं। वाद करते हैं। पहला कहे - क्षणिक है, अरे...! पलटता है पता नहीं?

...कहे, परमाणु हरा एक रंग का होवे तो अनादि-अनन्त हरा ही रहे; नहीं तो द्रव्य का नाश हो जाए - ऐसा कहता है। क्या? हरा एक गुण हो या दो गुण हो, ऐसा अनादि-अनन्त रहे। एक गुण दो गुण न हो। एक गुण दो गुण होवे तो द्रव्य नष्ट हो जाए - ऐसा कहते। ऐसा कहते, बहुत कहते। बहुत जोरदार कहते थे न? ऐसा जोर करते थे। नहीं, एक परमाणु का एक हरा गुण, वह दो गुण हो और हरे का पीला हो तो द्रव्य कहाँ रहा? द्रव्य का नाश हो जाए, ऐसा। पर्याय बदले तो द्रव्य का नाश हो गया - ऐसा कहते। उनके गुरु के सामने पड़ते। कहो! अब, जैन में रहे हुए ऐसे कहलाये कि हम सब पढ़े हुए हैं, उन्हें भी ऐसे घोटाले। वस्तु का पता नहीं होता। पलटे, पलटे क्या? पलटे क्या? परन्तु पलटे तब पर्याय पलटे या नहीं? पर्याय हो भले, परन्तु पलटे? एक गुण के दो गुण हो जाए तो द्रव्य का नाश हो जाए। परमाणु में शीत की उष्ण हो जाए तो वस्तु का नाश हो जाए। परमाणु खट्टा हो और वह मीठा हो जाए तो उसका नाश हो जाए। यह होते हैं न परमाणु दूसरे? दूसरे परमाणु अन्दर मीठे थे, वे बाहर आये, इसलिए मीठा लिया। वे... परमाणु जो खट्टे थे, वे मीठे नहीं हुए। ऐसा... मीठे अन्दर थे, वे बाहर आये। ऐसे थे। कहो! इसमें समझ में आया? ऐसी धमाल करे, बहुत धमाल करे। आहाहा! जैन सिद्धान्त का मैं जाननेवाला हूँ।

अज्ञानी सम्पूर्ण वस्तु को न जानने से, सम्यग्ज्ञान बिना **एकान्तरूप वस्तु मानकर परस्पर वाद करता है।...** लो, देखो न! बौद्ध क्षणिक ही मानते हैं, बड़ा पूरा बौद्ध का मत है। क्षणिक रहे, वह वस्तु; क्षणिक रहे, वह वस्तु; कायम रहे, वह वस्तु नहीं। वेदान्त एकदम एकान्त वस्तु को मानता है। बस! वस्तु ध्रुव ही है। पलटे? वस्तु पलटे? एक बार बाबा भगा। वह जाने कि ये अध्यात्म की बात करते हैं। महाराज! लाओ हम जाएँ। कहा - भाई! वस्तु पलटती है। वस्तु पलटे? आत्मा पलटे? ओ..य! अपने को सुनना नहीं। आत्मा पलटे तो आत्मा का नाश हो जाए। अविनाशी वस्तु है। आहाहा! भाई! अविनाशी तो वस्तुरूप से है, परन्तु पर्यायरूप से तो नाशवान है, पर्यायरूप से तो नाश्वान है। पर्याय पलट जाती है, नाशवान है। नाशवान और अविनाशी - दोनों उसके धर्म हैं। अकेला

www.vitragvani.com

अविनाशी माने तो भी नहीं; अकेला विनाशी माने तो भी नहीं। शरीरादि को नाशवान माने और आत्मा को अविनाशी माने, परन्तु वह तो किस अपेक्षा से ? समझ में आया ? इस शरीर की पर्याय पलट जाती है, एक साथ ज्यादा की, इस अपेक्षा से नाश हुआ – ऐसा कहा जाता है, परन्तु आत्मा भी विनाशीक है। क्षण–क्षण में आत्मा पलटे, इस अपेक्षा से विनाशीक है। व्यय होता है, नाश होता है, विनाश होता है, मृत्यु होती है। आहाहा! (जिसे) संसार का मरण हो, उसे मोक्ष का उत्पाद होता है। आत्मा, संसार से मर जाता है, मोक्ष होता है तब। कहो, समझ में आया ? ऐसे प्रत्येक पदार्थ नयी–नयी अवस्था से उपजता है; पूर्व अवस्था से व्यय होता है, नाश हो जाता है, तथापि वस्तु का नाश नहीं।

स्याद्वाद विद्या के बल से... वहाँ स्याद्वाद विद्या के बल से... वहाँ पहले (दृष्टान्त में) आँखों का था। यहाँ स्याद्वाद विद्या के बल द्वारा (– ऐसा लिया।) परन्तु अपेक्षा से कथन था जो वस्तु के स्वभाव का। जब अविनाशी कहना था, तब त्रिकाल की अपेक्षा अविनाशी कहा और इस संयोग का विनाशीक कहा। आता है न ?... तू अविनाशी... अविनाशी का अर्थ कि यह सब बदल जाए परन्तु तू कोई आत्मा बदलकर दूसरा नहीं होता। यह तो दूसरी पर्याय बदलकर दूसरी दशा हो जाए, इस अपेक्षा से। बाकी समय–समय विनाशीक आत्मा है। विनाशीक होगा ? पर्याय अपेक्षा से विनाश। पर्याय बदलती है; बदलती है कहो या विनाश कहो। पहले की अवस्था थी, वह गयी; गयी और दूसरी नयी हुई; ध्रुवरूप से तो कायम रहा। ऐसा न जाने, तब तक वस्तु के पूर्ण स्वरूप को इसने पहिचाना नहीं।

वहाँ स्याद्वाद विद्या के बल से... भगवान द्वारा कथित अनेकान्त—ऐसे ज्ञान—**बल से सम्यग्ज्ञानी यथार्थरूपेण वस्तु का निर्णय करके उसकी भिन्न–भिन्न कल्पना दूर कर देता है।** उन अन्धों की जैसे भिन्न–भिन्न (कल्पनायें दूर) की; ऐसे सम्यग्ज्ञानी, वस्तु के यथार्थपने का (निर्णय करके भिन्न–भिन्न कल्पनाओं को दूर करता है।) सभी धर्म सच्चे, सभी सच्चे – ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। कितने ही कहते हैं न ? सभी धर्म सच्चे, अपने को तो कोई खोटे लगते नहीं। वह स्वयं ही खोटा है। सभी धर्म, अपने को तो सबमें अच्छा ही लगता है। वह यहाँ कहते हैं कि मूर्ख है, तुझे भान नहीं। पूर्ण धर्म के

www.vitragvani.com

अवयव को, पूर्ण अंगों को न जाननेवाला, उसमें एक भी सच्चा धर्म हो सकता नहीं। समझ में आया इसमें?

कहते हैं, **वहाँ स्याद्वाद विद्या के बल से...** सच्चा ज्ञानी, यथार्थ तत्त्व को जाननेवाला। कार्य होता है, वह पर्याय में (होता है), द्रव्य वैसा का वैसा रहता है - ऐसे दोनों धर्म उसमें जानता हुआ, अपने अनुभव से जानता हुआ, अपने ज्ञान से जानता हुआ, वह सम्यग्ज्ञानी यथार्थरूप से वस्तु का निर्णय करके, उनकी अर्थात् अज्ञानियों की भिन्न-भिन्न कल्पना—एकान्त क्षणिक ही है, या एकान्त नित्य है— **उसकी भिन्न-भिन्न कल्पना दूर कर देता है। उसका उदाहरण-** उसका दृष्टान्त देते हैं।

सांख्यमती वसतु को नित्य ही मानता है,... एकदम नित्य है, पलटती नहीं, बदलती नहीं - सांख्य (वस्तु को) ऐसी मानता है। अपरिणामी कूटस्थ। **बौद्धमती क्षणिक ही मानता है।** यह बड़ा बौद्धमत है न अभी? अनित्य है, एक ही समय वस्तु रहती है; दो समय तो दोष हो गया, विकारी हो गयी। एक क्षणिक ही मानता है, एक समय का ही आत्मा। कोई भी वस्तु एक समय ही रहती है, अधिक रहती नहीं - ऐसा मानता है।

स्याद्वादी कहता है कि जो वस्तु सर्वथा नित्य ही हो... आत्मा और परमाणु सर्वथा नित्य अर्थात् एकरूप रहनेवाले हों तो **अनेक अवस्थाओं का पलटना किस प्रकार बन सकता है?** कहो! समझ में आया? आत्मा और परमाणु एक ही अवस्था, एक ही प्रकार से सर्वथा टिका रहना, एकरूप ही रहे - ऐसा यदि हो तो अनेक अवस्था का पलटना - आत्मा में भी अनेक दशा का होना, परमाणु में भी अनेक दशा का होना; **किस प्रकार बन सकता है?** वह किस प्रकार होगा? कहो! समझ में आया इसमें?

जो वस्तु को सर्वथा क्षणिक मान लें तो 'जो वस्तु पहले देखी थी, वह यही है' ऐसा प्रत्यभिज्ञान किस प्रकार हो सकता है? लो! क्षणिक ही माने तो पहले थी, वह की वह यह चीज है, तू कल पैसे लेने आया था, वह का वह तू देने आया है। समझ में आया या नहीं? या दूसरा है? वस्तुरूप से। **'जो वस्तु पहले देखी थी, वह यही है'... जो वस्तु को सर्वथा क्षणिक मान लें तो 'जो वस्तु पहले देखी थी, वह यही है' ऐसा प्रत्यभिज्ञान किस प्रकार हो सकता है?** यह तुम कल आये थे, वह न? -

www.vitragvani.com

ऐसा नहीं कहते ? वह का वही रहा हो तो न ? तुम कल आये थे। हाँ, मैं आया था।

अत: कथंचित् द्रव्य की अपेक्षा से वस्तु नित्य है... देखो! यह जैनदर्शन का अनेकान्तपना, यह वस्तु का-जीव का सत्त्व है। उसे यहाँ आचार्य महाराज ने बहुत वर्णन किया है। यह समझे बिना अज्ञानी अपनी कल्पना से अनेक धर्मों में एकपना देखता है। अनेक धर्म में एकपना देखता है – ऐसा नहीं है। समझ में आया ?... अनेक दिखे, परन्तु फिर भी वस्तु की स्थिति पूरी अलग होती है। वस्तु को जानता नहीं। नहीं तो ऐसा कहे, एक है, और स्वयं ऐसा ध्यान करने लगे लो! इसका अर्थ क्या हुआ ? समझ में आया ? एक है, और एक ओर बाबा बैठता था – एक है तो यह क्या करता है यह ? एक ही हो, उसे फिर अन्दर देखने का क्या ? और उसे बाहर से हटना क्या ? एक ही आत्मा हो, एक ही आठमा हो—ऐसा माने, फिर कहे—तुम (ऐसा करो) तो ऐसा किसलिए करते हो ? अनेकपना माना है, इसलिए एकपना मानने के लिये। परन्तु अनेकपना माना... अनेक हो गया। पहली अवस्था ऐसी थी तो अब मुझे ऐसा करना है – यह तो अनेक अवस्था हो गयी; वस्तु एक न रही। आत्मा एक होवे तो... एक है तो फिर ऐसा किसलिए करता है अन्दर ? पहली अवस्था कुछ थी और दूसरी अवस्था को बदलाने को अन्दर में ध्यान करता है। इसका अर्थ कि वह का वही रहकर आत्मा बदलता है, ऐसी अवस्था एक में दो प्रकार है। वस्तु अपेक्षा से एक है और दशा अपेक्षा से अनेक है। वह की वही वस्तु अनेक हुई। अनेक न हो तो तू ऐसा करता है किसलिए ? समझता है किसलिए ? वेदान्त कहे, सच्चा है; यह कहे, वह खोटा है – यह तुझे कहाँ से आया ? वेदान्त कहे वही सच्चा है। खोटा था ? खोटा मानता था, वह कौन ? बदल गयी अवस्था, वह कौन ?

अत: कथंचित् द्रव्य की अपेक्षा से वस्तु नित्य है... कथंचित् अर्थात् टिकने में कायम की अपेक्षा से पदार्थ नित्य है **और पर्याय की अपेक्षा से...** बदलने की अपेक्षा से वह वस्तु, वह की वह वस्तु भी क्षणिक है। जिस अपेक्षा से नित्य है, उस अपेक्षा से क्षणिक है – ऐसा नहीं। समझ में आया ? यह सब ज्ञान के बोल हैं, भाई! जिस अपेक्षा से नित्य है, उसी अपेक्षा से अनित्य है-ऐसा नहीं। वस्तु कायम टिकने की अपेक्षा से नित्य है और पलटने की अपेक्षा से अनित्य है। वह की वही वस्तु में दो धर्म हैं। यह कुछ पता

www.vitragvani.com

नहीं पड़े, इसलिए करो फिर, त्याग करो और बैठ जाओ सब छोड़कर एक ओर। परन्तु क्या छोड़ना? भ्रम तो छोड़ा नहीं। वस्तु के स्वरूप की स्थिति है, उसे तो जानी नहीं।

इस भाँति जब स्याद्वाद से... स्याद् अर्थात् अपेक्षा से कथन किया था। नित्य कहा था, वह नित्य टिकने की अपेक्षा से। अनित्य कहा था, क्षणिक कहा था, वह पलटने की अपेक्षा से। स्याद्-कथंचित् वाद द्वारा **सर्वांग वस्तु...** पूरी चीज को क्षणिक और नित्य को **निर्णय करने में आता है, तब एकान्त श्रद्धा का निषेध हो जाता है।** तब उसे एकान्त श्रद्धा का निषेध होता है। समझ में आया? लो! यह श्रावकाचार शुरु करने में... ऐसे ग्रन्थ का नाम श्रावकाचार है, परन्तु उसके पहले सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कैसा होता है? - उसे बताते हैं। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना श्रावकपना, व्रत आदि नहीं होते। अभी पहले इसका ठिकाना नहीं और श्रावक के व्रत कहाँ से आ गये? - ऐसा बताते हैं। हो जाए लो! व्रत लिये, इसलिए पाँचवाँ गुणस्थान हो गया! जमुभाई! ऐसा ही था, लो!... व्रत वहाँ हो गया? यह सब लड़के खायें बीस-बीस वर्ष के और वह वृद्ध न खाये इतना तो त्याग सही न? इतना तो व्रत सही न! ...अन्दर समकित बिना व्रत होंगे? व्रत थे कब? जिसमें स्थिर होना है, वह चीज ही कैसी है, (इसका पता नहीं)। नित्य बदलती अनन्त गुण का धर्म, पर की अपेक्षा रहित निरपेक्ष चीज है—ऐसा जहाँ अन्दर निर्णय नहीं कि जहाँ स्थिर होना है, उस चीज के भान बिना स्थिर कहाँ होगा? और स्थिर हुए बिना चारित्र हो नहीं सकता।

एकान्त श्रद्धा का निषेध हो जाता है। जब वस्तु के सर्वांग वस्तु का निर्णय करे, पूरी चीज़ का निर्णय करे कि आत्मा नित्य भी है, अनित्य भी है। सब बोल नीचे भावार्थ में हैं। **एकान्त श्रद्धा का निषेध हो जाता है। पुनः कैसा है स्याद्वाद? 'सकलनय-विलसितानां विरोधमथनं'** लो! **समस्त नयों से प्रकाशित जो वस्तु-स्वभाव,...** देखो! **उसके विरोध को दूर करता है।** क्षणिक, अवस्था की अपेक्षा से; नित्य, ध्रुव की अपेक्षा से - ऐसा करके सब नयों का प्रकाश, वह वस्तु का स्वभाव है। वह विरोध दूर करता है। ऐसा कैसे होगा? ऐसा कैसे (क्या), सुन न! रहने की अपेक्षा से क्षणिक है, टिकने की अपेक्षा से नित्य है, ऐसे विरोध दूर हो जाता है। कार्य की अपेक्षा से पलटती

www.vitragvani.com

है, वस्तु की अपेक्षा से कारण त्रिकाल रहता है। **समस्त नयों से प्रकाशित जो वस्तु–स्वभाव,...** देखा? समस्त नयों से प्रकाशित जो वस्तु का स्वभाव। वस्तु का स्वभाव कैसा है? कि समस्त नयों से प्रकाशित है। नित्य–अनित्य, एक–अनेक आदि नयों से वस्तु का स्वभाव प्रकाशित है। वस्तु का स्वभाव प्रकाशित है। वस्तु का जैसा स्वभाव है, वैसा सकल नय से प्रसिद्ध है – प्रकाशित है।

वस्तु में, जो आत्मा में स्वभाव, परमाणु का स्वभाव है, वह नयों से प्रकाशित है। है उसे नयों से प्रकाशित करते हैं। **उसके विरोध को...** और **उसके विरोध को दूर करता है।** प्रकाशित करते हैं और विरोध को दूर करते हैं। नित्य–अनित्य है? सुन न! टिकने की अपेक्षा से नित्य है, पलटने की अपेक्षा से अनित्य है। एक और अनेक.. वस्तु की अपेक्षा से एक है, गुण–पर्याय की अपेक्षा से अनेक है। सब होकर अनेक है – ऐसा नहीं। अपनी चीज की अपेक्षा से वस्तु एक है और उसके गुण और पर्याय की अपेक्षा से वह की वही चीज अनेक है। एक और अनेक दोनों उसके धर्म हैं। विरोध को दूर करनेवाला स्याद्वाद–अनेकान्त है। जिस अपेक्षा से एक कहा, उस अपेक्षा से अनेक नहीं; जिस अपेक्षा से अनेक कहा, उस अपेक्षा से एक नहीं, दोनों की अपेक्षा अलग है।

यह तो ज्ञान की बात ऐसी सूक्ष्म। समयसार में तो ऊपर–ऊपर से बात आ जाए। यह तो श्रावकाचार है न! इसमें पहले इष्टदेव (को नमस्कार किया)। इष्टदेव कैसे? ऐसे। जिनकी पर्याय में तीन काल–तीन लोक भलीभाँति ज्ञात हों, वैसे। परमागम कैसा? कि अनेकान्त जिसका जीव है। दो सार कहे। ऐसे परमागम को, ऐसे शास्त्र को नमस्कार करता हूँ। पंचास्तिकाय.....

भावार्थ : नय–विवक्षा से वस्तु में अनेक स्वभाव हैं... नय अर्थात् ज्ञान के एक अंश के प्रकार से... कहना। ज्ञान के एक पहलू से कहना, ऐसे वस्तु में अनेक स्वभाव हैं, वस्तु में अनेक धर्म हैं। विवक्षा से अर्थात् विवक्षा से कहना–कथनी। **और उनमें परस्पर विरोध है।** वस्तु में, आत्मा में और परमाणु में नित्य–अनित्य आदि परस्पर विरोध भी है। अब, दृष्टान्त देते हैं। **जैसे कि अस्ति और नास्ति का प्रतिपक्षीपना है...** जो आत्मा अस्ति है, वही आत्मा नास्ति है। नहीं हो न ऐसा? होता है – ऐसा कहते हैं यहाँ तो।

www.vitragvani.com

जैसे कि अस्ति और नास्ति का प्रतिपक्षीपना है परन्तु जब स्याद्वाद से स्थापन करें तो सर्व विरोध दूर हो जाता है। जो वस्तु अस्ति है, वही वस्तु नास्ति है। आहाहा..! अपनी अपेक्षा से अस्ति है और पर की अपेक्षा से नास्ति है - ऐसा उसका अपना धर्म है। समझ में आया? परन्तु किसे फुर्सत है इसमें? यह पहला सिद्धान्त अस्ति से ही उठाया। विरोध क्या है? कि अस्ति है, है वह नहीं? है वही नहीं? नहीं वह है? ऐसे। यह क्या? है वह नहीं? नहीं वह है? कि हाँ; है वह नहीं - इसका विरोध यहाँ दूर करते हैं। नहीं वह है - इसका भी विरोध दूर करते हैं। देखो! स्पष्ट खुलासा करते हैं।

परन्तु जब स्याद्वाद से स्थापन करें तो सर्व विरोध दूर हो जाता है। किस प्रकार? एक ही पदार्थ कथंचित् स्वचतुष्टय की अपेक्षा से अस्तिरूप है,... लो! वह का वही आत्मा, वह का वही परमाणु - एक ही पदार्थ कथंचित् अर्थात् किसी अपेक्षा से, किसी अपेक्षा से अर्थात् स्वचतुष्टय की अपेक्षा से अस्तिरूप है, ऐसा। देखो! आत्मा अपने द्रव्य से, अपने क्षेत्र से, अपने काल से और अपने भाव से अस्ति है, अस्ति है, है। एक ही पदार्थ आत्मा; ऐसे एक-एक परमाणु किसी अपेक्षा से अर्थात् स्वयं की अपेक्षा से - स्वचतुष्टय की अपेक्षा से अस्तिरूप है। स्वचतुष्टय समझे न? चार। इसका स्पष्टीकरण नहीं किया। ऐसे द्रव्य। परमाणु भी द्रव्य; द्रव्य की अपेक्षा से है, उसके क्षेत्र की अपेक्षा से परमाणु है, उसके काल की अर्थात् अवस्था की अपेक्षा से वह परमाणु है और उसकी शक्ति की अपेक्षा से परमाणु है।

ऐसे आत्मा, गुण-पर्याय के पिण्डरूप द्रव्य से है; क्षेत्र से है; क्षेत्र अर्थात् असंख्यात प्रदेशी। अपने क्षेत्र से है और अपनी अवस्था से; अवस्था है उसका काल, पर्याय उसकी अवस्था, वह अवस्थायी है, अवस्थायी है और अपनी शक्ति से है। शक्ति अर्थात् भाव। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव - यह स्वचतुष्टय - चार चतुष्टय। अपने चतुष्टय से है।

कथंचित् परचतुष्टय की अपेक्षा से नास्तिरूप है। वह का वह आत्मा नास्तिरूप है। पर से नास्ति न होवे तो अपने स्वरूप में रह सके ही नहीं; पर और ये दोनों एक हो जाएँ। अपनी अपेक्षा से अस्ति है। अपनी अपेक्षा से अस्ति न हो तो भिन्न रहे नहीं; पर की अपेक्षा से नास्ति न हो तो दोनों एकमेक हो जाए। समझ में आया?

www.vitragvani.com

यह एक ही बोल समझे न, तो इन सबके विवाद उड़ जाए, लो! इससे ऐसा हो और इससे ऐसा हो। यह ग्रन्थ मैंने किया... ग्रन्थ के परमाणु तो उनकी पर्याय से हुए हैं, उनके स्वकाल से हुए तो दूसरा उसे करे क्या? ऐसा इसमें आ गया। भाषा बोले, तब निमित्त से कथन था।

एक ही आत्मा, निगोद का हो या सिद्ध का हो; वैसे एक ही परमाणु, स्कन्ध का हो या पृथक् हो, वह स्व-अपने स्व चार, अपने स्व चार, स्व चार की अपेक्षा से अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से अस्तिरूप है; कथंचित् पर के चार की अपेक्षा से, पर के चार की अपेक्षा से - पर के चार। लो! पर के भी चार कहे - द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। देखो! शरीर के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अलग; आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अलग। वाणी के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अलग, आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अलग। कर्म के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अलग और आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अलग। परचतुष्टय अर्थात् उन कर्म के चार—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से आत्मा नास्तिरूप है। कर्म की अपेक्षा से आत्मा नास्तिरूप है, अपनी अपेक्षा से (अस्तिरूप है।) कहो! समझ में आया इसमें? ऐसा न हो तो वस्तु अनेक सिद्ध होगी नहीं। अनेक सिद्ध नहीं होगी और वस्तु में अनेक गुण भी सिद्ध नहीं होंगे।

पहले दो बोल में अस्ति-नास्ति से उतारा है। जो वस्तु 'है', वह वस्तु 'नहीं।' अपने अपेक्षा से है और पर की अपेक्षा से नहीं। जो वस्तु 'नहीं', वह वस्तु 'है।' एक पण्डित को पूछा था। तुम्हारा चन्द्रकान्त था न? पूछा - जड़ है या नहीं? एक कहे तो हैं, न कहें तो नहीं। यह स्याद्वाद है न जैन में तो? समझे न? जड़ है या नहीं? कहें तो है, न कहें तो नहीं। चन्द्रकान्त आचार्य था वहाँ। परन्तु किस प्रकार? कहा - ऐसा होय? जड़, जड़रूप से है; जड़, पररूप से नहीं। जैन में ऐसा स्याद्वाद... जड़ होवे भी सही और जड़ न भी हो। परन्तु किस प्रकार न हो? जड़, जड़रूप से तो है; जड़, पररूप से नहीं। जड़ कहें तो है, न कहें तो नहीं - इसका अर्थ क्या परन्तु? मानें तो एक है और मानें तो अनेक हैं, ऐसा। समझ में आया? ये अस्ति-नास्ति के दो भंग हुए।

अब, **कथंचित् समुदाय की अपेक्षा से एकरूप है,...** देखो! आत्मा और

www.vitragvani.com

परमाणु स्वयं अनन्त गुण का समुदाय है। वह समुदाय की अपेक्षा एक है। कथंचित् समुदाय की अपेक्षा से एकरूप है। परमाणु या आत्मा सभी अनन्त गुण का समुदाय है न? समुदाय है न? पिण्ड। - इस अपेक्षा से एक है। वह का वही **कथंचित् गुण-पर्याय की अपेक्षा से अनेकरूप है।** कहें तो एक है और कहें तो अनेक है, ऐसा नहीं। आत्मा को माने तो एक ही है और आत्मा न माने तो अनेक ही है - ऐसा नहीं। आत्मा को माने तो एक ही है और आत्मा को न माने तो अनेक ही है। दूसरा क्या? — ऐसा नहीं है। उसमें अनन्त गुण और पर्याय के समुदायरूप से देखो तो एक है और गुण-शक्तियाँ तथा पर्याय के भेद की अपेक्षा लें तो वह अनेक है। वह का वही एक और अनेक है। समझ में आया?

समुदाय की अपेक्षा से एक है, गुण-पर्याय की अपेक्षा से अनेक है - ऐसे अन्तर पड़ गया। यह का यही अपेक्षा से एक है और यह की यही अपेक्षा से अनेक है - ऐसा नहीं है। वस्तु - यह आत्मा अपने समुदाय, गुण के समुदाय की अपेक्षा से एक है; गुण-पर्याय अपेक्षा से अनेक है। एक है, वह अनेक है, परन्तु वह किस अपेक्षा से? अनेक है, वह एक है - यह किस अपेक्षा से? अनेक है, वह गुण-पर्याय से; एक है वह समुदाय से। ऐसे दोनों का विरोध स्याद्वाद मिटा देता है और जैसा उसका स्वभाव है, वैसा बताता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)